समीक्षा / मैत्रेयी (वागर्थ, कलकत्ता में प्रकाशित)

उपन्यास में उपनिषद्

हिन्दी में औपनिषदिक उपन्यास की कोई परम्परा नहीं है । कुछ छुट–पुट प्रयास ही हुए हैं उन्ही में से एक है प्रभुदयाल मिश्र का उपन्यास '' मैत्रेयी'' जिसकी कथा के सूत्र वृहदरण्यक, छांदोग्य, मुण्डक, ईशावास्य, कठ आदि उपनिषदों से लिये गए हैं । कथा–सूत्रों के आधार पर ही लेखक ने इसे औपनिषदिक उपन्यास कहा है, किन्तु चरित्र–चित्रण और शिल्प–विधान की दृष्टि से यह एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास है । ब्रह्म् – वेत्ता ऋषि याज्ञवल्क्य कीा दो पत्नियॉ है–कात्यायनी व मैत्रेयी ।

ऋषि कात्यायन की पुत्री है कात्यायनी, जो माता के मर जाने के कारण छोटी उम्र से ही आश्रम की व्यवस्थायें देखती–संभालती है । तरुणाई जब उसका श्रंगार करती है, तब उसके पिता को चिन्ता होने लगती है उसके विवाह की । वे उसके योग्य वर की खोज में लग जाते हैं । आरुणि उद्दालक के शिष्य और ब्रह्म वेत्ता स्नातक याज्ञवल्क्य को जामाता बनाकर वे निश्चिन्त हो जाते हैं । कात्यायनी ऋषि – पत्नी होकर भी ज्ञान–मार्गी नहीं बन पाती, क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में आश्रम–व्यवस्था का गुरुतर भार उसके कंधो पर रहता है । वह एक आदर्श गृहस्थिन के रूप में हमारे सामने आती है और अपनी एक छाप छोड़ती है ।

ब्रह्म–वेत्ता याज्ञवल्क्य का आश्रम एक सुविख्यात ज्ञान–पीठ बन जाता है और दूर–दूर से शिक्षा प्राप्त करने वाले ब्रह्मचारी आकर आश्रम में रहते हैं । अतिथि ऋषि आकर ठहरते हैं, राजपुरुष आते हैं और कभी'–कभी कोई राजा अपनी सेना के साथ आ जाता है । सबका यथोचित सत्कार आश्रम में किया जाता है, जिसकी व्यवस्था कात्यायनी करती है । एक ऐसा अवसर भी आता है , जब आश्रम में खाद्य और यज्ञादि की सामग्री कम हो जाती है । उसी समय राजा जनक एक बहुत बडी शास्त्रार्थ –सभा का आयोजन करते हैं, जिसमें समस्त आर्यवर्त के ब्रहमवेत्ता आचार्यो, ऋषियों और वेदों के व्याख्याताओं को आमंत्रित किया जाता है । विजेता को एक हजार ऐसी गायों के दिये जाने की घोषणा की गई थी, जिसके सींग सोने से मड़े गए थे । ऋषि याज्ञवल्क्य अपने शिष्य सामश्रवा को लेकर उस सभा में पहुॅचे और शास्त्रार्थ के पहले ही शिष्य को गायें हॉक ले जाने की आज्ञा देने लगे । उसके आत्म विश्वास को देखकर अनेक प्रतियोगी श्रीहीन हो गए । बहुत सरलता से उन्होंने शास्त्रार्थ सभा में विजय प्राप्त करने की स्थिति दत्पन्न करदी । जब सब पुरुष प्रतियोगी याज्ञवल्कय से पराजित हो चुके, तब विदुषी नव यौवना गार्गी या मैत्रेयी उत्सुकता के साथ खडी हुई और उसने दो प्रश्न याज्ञवल्कय को निरुत्तर करने के लिये पूछे । याज्ञवल्कय ने दोनों के सटीक उत्तर दिये, जिन्हें गार्गी ने मान लिया । याज्ञवल्क्य विजेता घोषित किये गए । जीत कर भी वे अपने हदय को हार गए, जिसे मैत्रेयी ने जीत लिया था । राजा जनक

घोषणा के अनुसार याज्ञवल्क्य को पुरस्कृत करते हैं और मैत्रेयी के साथ उसका विवाह सम्पन्न कर देते हैं ।

मैत्रेयी गर्ग गोत्रीय ऋषि वाचक्नु की पुत्री है । वह विदुषी ,सुवक्ता, दबंग और स्वतंत्र प्रकृति की है । उसका पूरा समय चिन्तन,मनन और शास्त्रार्थ में व्यतीत होता है । वह पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को गौण स्थान दिए जाने से क्षुब्ध रहती है और शास्त्रार्थ सभाओं में जाकर अपने समान अधिकार को प्रतिष्ठित करती है । वह राजा जनक के द्वारा आयोजित ज्ञान – सभा में भी सम्मिलित होती है और पहली बार एक पुरुष के प्रति आकर्षित होती है । वह पुरुष है याज्ञवल्क्य । वह अपने प्रश्नों से याज्ञवल्कय के ज्ञान और वाक् पटुता की परीक्षा करती है । यह जानते हुए भी कि ऋषि विवाहित हैं, वह उनके साथ विवाह कर लेती है और उनके आश्रम में जाकर कात्यायनी को बड़ी बहिन मान कर रहती है । कात्यायनी के समपर्ण से वह प्रभावित होती है । कात्यायनी में सौतिया डाह नहीं और आश्रम –व्यवस्था में मैत्रेयी के सहयोग की साधिकार मांग नहीं करती, इन बातों का भी मैत्रेयी पर प्रभाव पड़ता है । किन्तु वह ब्रह –चर्चा में ही लगती रहती है, आश्रम का काम नहीं कर पाती । अपने वैदुष्य के आधार पर वह याज्ञवल्कय के अधिक निकट हो जाती है ।

इन प्रधान पात्रों के अतिरिक्त दो पात्र और हैं । एक राजा जनक है, जो वीतराग, परमज्ञानी और लोकप्रिय शासक है । वे ज्ञान–सभायें आयोजित करते हैं और आश्रमों के दीक्षांत समारोह में मुख्य आतिथ्य ग्रहण करते हैं । वे परमदानी और उदार हदय हैं । मैत्रेयी के विवाह की व्यवस्था भी वे ही करते हैं । दूसरा पात्र है सामश्रवा, जो ऋषि याज्ञवल्कय का शिष्य है । वह पुरुस्कार में प्राप्त एक हजार गायों के लाने की व्यवस्था करता है और अपने गुरु और मैत्रेयी के प्रथम मिलन से चिन्तित होता है और उनके द्वारा द्वितीय वरण करने के औचित्य का प्रश्न मैत्रेयी से पूछता है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास के लिए यह कथा आदर्श होती है जिसमें एक प्रेमी की दो प्रेमिकायें हों, या एक प्रेमिका के दो प्रेमी हों । ऐसी कथा में मनोवैज्ञानिक घात–परिघात का जो त्रिकोण बनता है, उससे पाठक को चरित्रों की आन्तरिकता का परिचय मिलता है और वह उनका ठीक आकलन कर सकता है । मैत्रेयी में त्रिकोण है एक पति और दो पत्नियों का, किन्तु उसमें टकराहट नहीं है । कात्यायनी की कर्मठता और मैत्रेयी का वैदुष्य द्वन्द्व की स्थिति पैदा करने के लिये लालायित है, किन्तु कात्यायनी की सद्बुद्धि और याज्ञवल्कय का दोनों पत्नियों के प्रति समान अनुराग कलहकारी द्वन्द का मार्ग रोक देता है । पात्रों का अपना अन्तर द्वन्द्व अवश्य है, जिसमें वर्णनात्मकता के स्थान पर विचारात्मकता को प्रतिष्ठित किया गया है और कम पात्र होते हुए भी वार्तालाप की अधिकता को सम्भव बनाया है। ज्यामिती में यह सिद्ध किया जाता है कि त्रिकोण के तीनों कोणों का योग दो समकोण होता है, किन्तु मैत्रेयी में यह स्वयम् सिद्ध है कि त्रिकोण के तीनों कोणों का योग केवल एक समकोण है – याज्ञवल्कय ।

उपन्यास का विचार पक्ष अत्यंत समृद्ध है । अनेक ऋषियों का तत्व–चिन्तन शास्त्रार्थ या ज्ञान–सभाओं में अभिव्यक्त होता है । गुरु अपने प्रिय साधक शिष्य को ब्रह्म–ज्ञान का उपदेश देते हैं । याज्ञवल्कय ने मैत्रेयी को जो उपदेश दिया है वह ब्रह्म–विद्या का निचोड़ है ।

उपन्यास आदि से अंत तक औपनिषदिक चिन्तन का एक दस्तावेज है । आचार्य, ऋषि , गुरु और शिष्य तो ज्ञान–चर्चा में संलग्न रहते ही है, जनक और अजातशत्रु, जैसे राजा भी तत्वज्ञान की बारीकियॉं का विवेचन करते दिखाये गए हैं । इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखक ने बड़ी कुशलता से नारी–जीवन की समकालीन और सर्वकालीन समस्या से संबंधित विचार–कथा सूत्र में पिरो दिए हैं । फलैप पर ही मैत्रेयी का सोच देकर लेखक ने जैसे उपन्यास की नारी – भावना को रेखांकित कर दिया है । इसी प्रकार पृष्ठ 7,8,9,27,35,36 आदि पठनीय है । सर्वकालीन समस्या यह है – स्त्री पुरुष सम्बन्धों की रहस्य तहों को अनावृत करने के लिए लगातार इतना कुछ कहा जाकर भी ऐसा वह क्या है जो इसे अपूर्ण ही रखता आया है सदा । मनुष्य हो या स्त्री वे एक दूसरे के इतने निकट रहते हुए परस्पर इतने आशंकित ,आतंकित और उद्वेलित क्यों होते हैं । सब जानते , पहचानते और मानते हुए भी भी अपने आसार्थक अतीत/व्यतीत को दुहराते हुए किससे विवश हैं – स्वयं से, प्रकृति से अथवा अपने विपरीत धर्म से .... (पृष्ठ 83)

अतरंग चरित्र–चित्रण की शैली से पूर्वदीप्ति का समन्वय कर लेखक ने कथा को सुगठित रूप प्रदान किया है । इस शैली के कारण ही पाठक कात्यायनी, मैत्रेयी, याज्ञवल्कय और सामश्रवा के चरित्रों की अन्तर्यात्रा करने में सफल होता है । जनक की ज्ञान सभा में शास्त्रार्थ के पहले ही याज्ञवल्क्य का अपने शिष्य को गायों को हॉक ले जाने का आदेश देना, उनके आत्म –विश्वास का द्योतक तो है ही, वह आदेश अन्य विद्वानों में आत्महीनता जाग्रत करने का प्रयास भी है ।

इस उपन्यास की भाषिक संरचना उपनिषद काल के वातावरण को उत्पन्न करने में समर्थ है । भाषा में प्रांजलता के साथ नए शब्द–प्रयोग और पशुओं की बोली के लोक प्रचलित अर्थ देकर उसे जीवंत बना दिया है – ''पद–यात्रा'' के स्थान पर '' पग–यात्रा'' (पृष्ठ 72) ''तत्काल'' के स्थान पर तत्समय का प्रयोग और '' जंगली सियारों की '' हुआ–हुआ'' ध्वनि (पृष्ठ 49) आदि ।

जिस तरह के उपन्यास की प्रतीक्षा प्रबुद्ध पाठक करता है, यह उपन्यास उसी तरह का है । गंभीर वाचन के लिए आज कल पुस्तके कहॉं मिलती हैं !

परशुराम शुक्ल विरही, शिवपुरी

समीक्षा (भारतीय वाङ्मय, वाराणसी में प्रकाशित)

मैत्रेयी / उपन्यास / प्रभुदयाल मिश्र / डा. आनंद वर्धन

पुराण, इतिहास और मिथक लेखकों, विशेषकर कथा और आख्यानकारों के लिये सदा से शोध और पुनर्संधान का केन्द्र रहे हैं किन्तु उपनिषदों की कथानक सीमा में प्रवेश की पात्रता और क्षमता बहुत कम साहित्यकारों में देखी गई है । वैसे तो आख्यानों की वेदों और उपनिषदों में कमी नहीं है किन्तु संभवतः इनके उपयोग के कौशल और इनके प्रायः विश्रखंलित सूत्रों का संयोजन जिस मनीषा की पूर्वापेक्षा रखता है, वह क्षमता दुलर्भ ही प्रतीत होती है । लेकिन जिन रचनाकारों ने पुराणों ,मिथकीय आख्यानों या उपनिषदों को अपनी रचना का आधार बनाया है, वे पाठकों को ऐसे संसार तक अवश्य ही पहुंचाते हैं जो हिन्दी के पाठकों के सर्वथा निकट और उसकी पहचान का केन्द्रीय आधार है ।

श्री प्रभुदयाल मिश्र का ताजा उपन्यास 'मैत्रेयी' उपनिषद की ऐसी ही सशक्त भूमिका पर आधारित है । श्री मिश्र का योग, दर्शन और साहित्य पर समान अधिकार है । मैत्रेयी उनकी इस समन्वित पात्रता का सद्यशः प्रमाण है । इसके पूर्व प्रकाशित उनकी 'सौन्दर्य लहरी–काव्यानुवाद ' सबके लिये गीता ' और उत्तर पथ विशेष चर्चित रह चुकी हैं ।

यह उपन्यास आठ उपशीर्षकों में विभाजित किया गया है । वस्तुतः मधुकाण्ड, कात्यायनी, याज्ञवल्क्य ,मैत्रेयी, सामश्रवा, जनक, आरण्यक और मधुकाण्ड उत्तर आदि ये शीर्ष एक केन्द्रीय परिदृश्य में विभिन्न गवाक्ष है जिसके माध्यम से लेखक ने अपने दार्शनिक सत्य को विभिन्न कोणों से प्रदर्शित करने की चेष्टा की है । मूल कथा लगातार ऋषि याज्ञवल्क्य और उनकी द्वितीय पत्नी मैत्रेयी के ही इर्द–गिर्द धूमती है । जाहिर है कि लेखक के विशेष ध्यान के केन्द्र में मैत्रेयी ही है । चाहे जनक की सभा में ज्ञान ज्ञान गर्विता गार्गी हो अथवा ऋषि का आश्रम की अनुगता सन्यासिन, उसकी प्रश्नाकूलता उसे याज्ञवल्कय के सुदीर्घ समाधानों से भी अधिक की वाचालता प्रदान करती है । उपनिषदों के ज्ञान और दार्शनिकता से बोझिल कथा को रस सिक्त बनाने के लिये लेखक ने गार्गी और मैत्रेयी नाम से प्रख्यात प्रायः दो भिन्न पात्रों की एक तार्किक संगति बिठाई है । यह अस्वाभाविक भी नहीं लगता कि अपने ज्ञान के गुमान में याज्ञवल्क्य को सबसे प्रभावी चुनौती देने वाली मैत्रेयी ऋषि के प्रति समाकृष्ट भी हुई हो और उसकी संपत्ति के बंटवारों के काल का व्यवहार तो निश्चित ही उसकी मूल प्रकृति के निकट है ही ।

समीक्षा (तुलसी मानस भारती, भोपाल में प्रकाशित)

मैत्रेयी : परा का सत्य से साक्षात्कार

पुस्तक	मैत्रेयी
लेखक	प्रभुदयाल मिश्र
प्रकाशक	विश्वविधालय प्रकाशन, वाराणसी
मूल्य	एक सौबीस रूपये

कहते है कि सत्य के पास शब्द नहीं होते जबकि अनुभव शब्दों के सहारे ही सत्य बटोरना चाहता है । कहानी ने अब तक ऐसी अनेक दुश्चेष्टायें की हैं किन्तु उसे जो हासिल हुआ वह हमारे सामने है । सवाल यह भी पूछा जा सकता है कि कहानी इस पचड़े में पड़ती क्यों है ? किन्तु यह प्रश्न तो वैसा ही हुआ कि हम कहें कि हम बोलते या लिखते क्यों हैं ?

कहानी ने इसीलिए वैदिक सूक्त, गल्प किस्सा और बयानबाजी से लेकर अकहानी तक की लम्बी यात्रा की है । वह अपने पैरों पर चलना बखूबी जानती है । अतः बीसवीं सदी के समापन वर्ष में जब साधना सम्पन्न साहित्यकार श्री प्रभुदयाल मिश्र ''मैत्रेयी के रूप में औपनिषिदिक कथा का मर्म उजागर करते है तो साहित्य जगत में उसका भरपूर स्वागत होना चाहिए । कहानी की इसी अथक यात्रा का यह एक उल्लेखनीय पड़ाव है ।

उपनिषद वेदों के कथात्मक भाष्य के रूप में जाने जाते हैं किन्तु इनकी कथाओं को कहानी के रूप में ग्रहण कर लेना अपने आप में एक पुरस्कार है । पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी की इस गौरवपूर्ण परंपरा में श्री मिश्र का यह अवदान हिन्दी जगत की मूल्यवान धरोहर है । श्री द्विवेदी जी ने अपने ''अनामदास के पोथे'' में छांदोग्योपनिषद का आधार लिया था तो श्री मिश्र ने बृहदारण्यक उपनिषद को उठाया है । याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियां, उनकी अलग अलग वृत्तियां और विदुषी मैत्रेयी का ऋषि की द्वितीय भार्या के रूप में सान्निध्य आदि सभी औपनिषदिक कथावस्तु तो सुलभ कराते हैं किन्तु मूल्य की भारी वैचारिक बोझिलता में इसका निर्वाह जैसे लेखक की बड़ी चुनौती रही है । पुस्तक की भूमिका में लेखक ने एक मूलभूत प्रश्न खड़ा किया है–'' इस कथानक की मैत्रेयी स्वयं से पूछ सकती है–उसे क्यों आवश्यक है आत्मसाक्षात्कार के अनेक युगों के पश्चात् स्त्री–स्त्री और पुरुष की त्रिकोणीय परिधि में प्रस्तुत होना.....उसे तो अब अपने आपको शास्त्रार्थ की विषय वस्तु के रूप में भी परोसना होगा''

जाहिर है कि लेखक का वास्तविक कथ्य साक्षात्कार के अनेक कहे अनकहे अनुभवों को व्यवहार और मनोविज्ञान की भूमिका में परखना भी है जो हमारे आसपास इतनी सहजता से बिखरे पड़े है । इसीलिए उसके इस कथन को पूरी गम्भीरता से ग्रहण करना बहुत आवश्यक हो जाता है–

''आज जनक (महज एक पात्र) की ज्ञान सभा में खुली हुई केशराशि, मुखमण्डल और गहन जीवनानुभव की बोझिल वाणी से शास्त्रार्थ को उद्यत मैत्रेयी पुनः एक चुनौती है किसी याज्ञवल्क्य की नहीं, स्वयं और समाज की भी ।''

राजा जनक की ज्ञान सभा में गार्गी और याज्ञवल्क्य का शास्त्रार्थ उपनिषदीय आख्यान का बहुश्रुत प्रसंग है । इसी प्रकार याज्ञवल्क्य द्वारा कात्यायनी और मैत्रेयी में सम्पत्ति के बंटवारे की कथा भी ऋषि के संदेश की पृष्ठभूमि में बहुलता से कही जाती है । श्री मिश्र ने इन दो पात्रों को जोड़कर कथा को रोचक विस्तार दिया है । ऋषि ओर ऋषिका में प्रेमांकुरों का उदित होना तथा उससे उनके जीवनानुभवों के संचय की सामर्थ्य उपनिषद के मूल कथ्य को अधिक संप्रेषणीय बनाती

है। यहां मैं ऐसे दो उदाहरण ही पुस्तक से उद्धृत करूंगा । मैत्रेयी सामश्रवा को अपने रागानुबंध का समाधान इन शब्दों में करती है–

''यह तुम जानते हो कि अपने चैतन्य के प्रति सचेत रहते हुए यदि अपने भीतर हुए किन्हीं परिवर्तनों के तुम साक्षी बने रह सकते हो तो, ऐसा परिवर्तन तुम में कोई मलिनता उत्पन्न नहीं करता । मेरा और तुम्हारे ज्ञाननिाष्ठ योगी का पारस्परिक अनुराग भाव इसी भाव में उत्पन्न हुआ है।''

उधर अपने अनुभव और ज्ञान को निचोड़ सा प्रदान करते हुए याज्ञवल्क्य मैत्रेयी को समझाते हैं–

'ईश्वर तो सर्वज्ञाता है न ? क्या कोई इस सर्वज्ञाता को भी जान सकता है ? ऐसा संभव होने पर ईश्वर सर्वज्ञाता कैसे रह सकेगा ? किसके द्वारा जाना जा सकेगा वह ? क्या सर्वज्ञाता भी जानने योग्य हो सकता है ?'

पुस्तक का कलेवर प्रभावशील है । पुस्तक का मुद्रण बड़ी सावधानी और सुरुचि से हुआ है।

यमुना नारायण मिश्र, भोपाल

मैत्रेयी / एक उत्कृष्ट दार्शनिक उपन्यास

(दैनिक भास्कर में प्रकाशित)

प्राचीन भारत में कथा संवादों और द्रष्टान्तों के माध्यम से चिन्तन को सहेजने की कोशिश जिन ऋषियों ने की है उनके नाम समाज की स्मृति में ताजे हैं । आज भी वह काल, उस काल में घटित घटनाएं और पात्र, साहित्य की कथा वस्तु को प्रचुर सामग्री प्रदान करने में सक्षम है । यह अलग बात है कि प्रगतिशीलता के नाम पर आधुनिकता की जिस विगलित प्रवृत्ति से हिन्दी साहित्य ग्रस्त है, उसमें यह खतरा जरूर है कि प्रभुदयाल मिश्र का उपन्यास मैत्रेयी का साहित्यिक मूल्यांकन सही ढंग से न हो, लेकिन समाज में आज भी अधिसंख्य लोग वे हैं जिन्हें अपनी संस्कृति और स्मृति से जुड़ने की प्रबल चाह है । ऐसा विशाल पाठक वर्ग मैत्रेयी उपन्यास को रुचिपूर्वक पढ़ेगा । उपन्यास ऋषि याज्ञवल्क्य, गार्गी और कात्यायनी के जीवन पर केन्द्रित है । याज्ञवल्क्य का पहला विवाह कात्यायनी के साथ हुआ था और कात्यायनी ने स्वयं को आश्रम की सेवा में तल्लीन कर दिया था । बाद में जनक की सभा में शास्त्रार्थ के समय मैत्रेयी से याज्ञवल्क्य के संवाद की परिणति दोनों के विवाह में हुई। मैत्रेयी और कात्यायनी के बीच कभी सौतिया डाह नहीं हुई । जब महर्षि याज्ञवल्क्य ने सन्यस्त होने का संकल्प लेते हुए आश्रम की संपदा को दोनों के बीच समान रूप से वितरित करने का विचार व्यक्त किया, तो कात्यायनी का उत्तर था– महाराज मैं आपके लोक और परलोक किसी भी क्षेत्र में किसी भी प्रकार से बाधक नहीं बनना चाहती । मैं जानती हूं कि आत्मज्ञान के क्षेत्र में किसी की भी आपसे कोई तुलना नहीं

हो सकती । यह आपकी अपनी विशिष्ट उपलब्धि का क्षेत्र है । इसमें मेरी अपनी सीमा है । अस्तु, आपने जो निर्णय लिया है, वह ठीक ही है । दूसरी ओर मैत्रेयी का उत्तर है–''जो सम्पत्ति मुझे अमरता नहीं देती उसका मैं क्या करूंगी ? महाराज मेरी प्रार्थना है कि आप अपने आश्रम की सम्पूर्ण संपत्ति देवी कात्यायनी को ही सौंप दे और मुझे ऐसा उपदेश करें जो जीवन को मृत्यु के पार ले जा सके ।'' लेखक इने मैत्रेयी व कात्यायनी के बौद्धिक सामर्थ्य को कुशलतापूर्वक रेखांकित करते हुए प्राचीन भारतीय समाज में नारी की सामाजिक स्थिति को भी स्पष्ट कर दिया है । अनुसुइया के माध्यम से सतीत्व को परिभाषित करते हुए लेखक कहता है ''सतीत्व स्त्री की एक सकारात्मक शक्ति है । यह एक स्त्री द्वारा अपने प्रकृत व्यक्तित्व में किया गया आरोहण है'' उपन्यास की नायिका मैत्रेयी स्वयं प्रश्न करती है ''क्या नारी मात्र ही अपूर्ण है ?'' और स्वयं उत्तर भी देती है ''अब तक स्त्री ने पुरुष के प्रति यदि समर्पण किया है तो यह उसकी प्रकृति और धर्म हो सकता है । इसे उसकी अशक्तता कैसे माना जा सकता है ? किन्तु विडम्बना यह है कि स्वयं नारी भी इसे अपनी नियति मानकर अब तक पुरुष वर्ग से छली जाती रही है ।'' मैत्रेयी का लेखक अपने पाठकों को प्राचीन आश्रम व्यवस्था से परिचित कराता चलता है और बौद्धिक बोझिलता से कथानक को बचाने की कोशिश करता है । उपनिषद चिंतन की व्याख्या सरल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास चाहे जितना किया जाए, वह सहज ही बोधगम्य हो जाएगा कहना कठिन है । यदि उपन्यासकार कथा वस्तु को ज्यादा एकीकृत ढंग से प्रस्तुत करते तो उपन्यास की रोचकता का निर्वाह ज्यादा अक्ष्छे ढंग से होता । विषय के साथ न्याय करने का दायित्व लेखक का होता है इसमें असंतुलन होने पर दोष भी लेखक को स्वीकार करना पड़ता है । उपन्यास में यह दोष बहुत स्पष्ट है, पर लेखक ने कथासूत्रों को इस ढंग से पिरोया है कि पुस्तक समाप्त करने के बाद पाठक रससिक्त अनुभव करता है ।

कैलाश चंद पंत, भोपाल